भाषा एवं संस्कृति का अंत:गुंथन और इसके निहितार्थ

केवलानंद काण्डपाल*

प्रत्येक मनुष्य को आपसी अंतःक्रिया के लिए भाषा की ज़रूरत होती है। भाषा को बोलने का लहजा, प्रयोग में लाए जाने वाले प्रतीकों या संकेतों आदि का निर्धारण उस समाज की संस्कृति द्वारा किया जाता है। मनुष्य जाति के मूल विभागों और उनके परस्पर संबंधों का विश्लेषण करने वाले विद्वानों तथा समाज-भाषाशास्त्रियों की प्रमुख मान्यता है कि भाषा स्वभाव या आदत है। अगर भाषा आदत है या आदतन सीखी जाती है तो स्पष्टतः उसका संबंध मनुष्य के पीढ़ीगत संस्कारों से अवश्य ही होना चाहिए अर्थात् भाषा किसी समाज की संस्कृति से उद्भूत एक व्यवस्था है। भाषा का एक समाजशास्त्र होता है। इसी प्रकार समाज की एक विशिष्ट संस्कृति होती है और संस्कृति की अपनी विशिष्ट भाषा भी होती है। अतः किसी समाज और उसकी संस्कृति एवं भाषा में जटिल प्रकार का अंत:गुंथन रहता है। इस लेख में भाषा एवं संस्कृति के आपसी अंत:गुंथन को विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है।

भाषा किसी भी समाज की चेतना एवं इस चेतना से निःसृत मूल्यों को सहजने तथा उन्हें आगे की पीढ़ियों में हस्तांतरित करने का एक सशक्त माध्यम होती है। किसी भी समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति, उस समाज विशेष के प्रयासों, आविष्कारों, कौशल विकास एवं मूल्यों के आत्मसातीकरण पर निर्भर करती है। इन सभी को लिपिबद्ध करने, संरक्षित करने एवं एक-दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाषा की ज़रूरत पड़ती है। भाषा के माध्यम से किसी समाज विशेष के लिए उपयुक्त ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों को ग्रहण करने की प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है। किसी समाज में भाषा सभी व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार से कार्य करने, बरतने एवं व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है तथा इस प्रकार वह समाज विशेष की चेतना को अभिव्यक्त करती है। समाज का संगठन एवं उसकी नींव समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों पर निर्भर करती है। मूल्यों की संरचना एवं अभिव्यक्ति समाज द्वारा अपनाई गई भाषा के माध्यम से होती है। मानव समाज इन मूल्यों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है और इन मूल्यों को आधार बनाकर जीवन जीने का प्रयास करता है। इस प्रकार अपनी भाषा में, उस समाज विशेष की संस्कृति को प्रस्तुत करता है।

भारत की भाषायी विविधता उतनी ही आश्चर्य चकित करती है; जितना कि इसका सांस्कृतिक बहुलवाद। ये दोनों विविधताएँ परस्पर संबद्धता की संगति में विद्यमान हैं, इसलिए भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधता हमारी ताकत है। भारत बहुभाषी देश है।

* *प्रधानाध्यापक*, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पुड्कुनी (कपकोट), बागेश्वर, उत्तराखंड 263642

वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार, भारत में 1652 भाषाओं की पहचान की गई थी, जो पाँच विभिन्न भाषा परिवारों के अंतर्गत आती हैं। 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति 'भाष' धातु से हुई है, जिसका सामान्य अर्थ है 'बोलना'। जब कोई बच्चा बोलना शुरू करता है तब वह अपने ध्वनि यंत्र का प्रयोग करता है और इस ध्वनि यंत्र का प्रयोग निश्चित रूप से किसी न किसी भाषा के संदर्भ में ही किया जाता है। यदि यह प्रयोग किसी भाषा के संदर्भ में नहीं किया जा रहा है तो वह कोई ध्वनि तो हो सकती है, परंतु उसे बोलना नहीं कहा जा सकता। कोई भी व्यक्ति क्यों बोलता है? या उसे बोलने की ज़रूरत क्यों पड़ती है? इसका सहज उत्तर यह है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए बोलता है और यह आवश्यकता किसी विचार, तथ्य, संदेश या भाव के संप्रेषण के क्रम में उत्पन्न होती है। इसके लिए एक या एक से अधिक श्रोताओं का होना भी ज़रूरी है। ये श्रोता प्रत्यक्ष सामने मौजूद हो सकते हैं या फिर वे हो सकते हैं जो बाद में सुन रहे होंगे, जिन्हें अप्रत्यक्ष श्रोता कह सकते हैं। किसी विषय पर किसी विशेषज्ञ के व्याख्यान की रिकॉर्डिंग, किसी गायक के गाने की रिकॉर्डिंग आदि इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। आशय यह है कि बोलना/संभाषण किसी उद्देश्य या आवश्यकता के क्रम में ही होता है। अतः बोलने वाले (वक्ता) के सामने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष श्रोता/श्रोताओं की मौजूदगी होनी चाहिए। ताकि वक्ता अपनी बात, संदेश, भाव आदि का संप्रेषण कर सके। इस प्रकार वक्ता एवं श्रोता का अनिवार्य संबंध स्थापित होता है।

भाषा

आदि मानव से आधुनिक मानव के विकास की यात्रा में भाषा एक महत्वपूर्ण सेतु है, जिसने मनुष्य को सामाजिक रूप से संगठित करने में अहम भूमिका निभाई है। भाषा मनुष्य के विचारों के आदान-प्रदान का एक सशक्त माध्यम है, इसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा सकता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण कर सकता है।

अमेरिकन भाषा-विज्ञानी द्वय ब्लॉक और ट्रेगर (1942) ने भाषा को परिभाषित करते हुए लिखा है, "भाषा मनुष्य की वागेंद्रियों से उत्पन्न यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा एक भाषा समुदाय के सदस्य परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

किसी भी समाज की भाषा वस्तुतः उस समाज की संस्कृति को वाचिक रूप से प्रस्तुत करने की एक सामाजिक व्यवस्था है। समाज ही अपनी भाषा के व्यवहार, भाषा के स्वरूप, उसकी उच्चारण संबंधी, व्याकरणिक, अर्थगत एवं लिपिगत संरचना संबंधी नियमों का निर्धारण करता है। भाषा संबंधी इन नियमों का पालन करना उस समाज विशेष के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है। किसी समाज का प्रभाव क्षेत्र जितना व्यापक होता है, उसकी भाषिक क्षमता एवं प्रभावशीलता उतनी ही व्यापक होती है।

मानव विकास के इतिहास के अवलोकन से हमें ज्ञात होता है कि किसी भी समाज के गठन एवं विकास में एक सुगठित भाषा की अहम भूमिका है। वान्द्रियेज (1986) के अनुसार, "मानव का अधिकार भाषा पर न होता तो वह विधि द्वारा नियत जीवन के इतने महत्वपूर्ण ध्येय की पूर्ति नहीं कर पाता।" किसी भी समाज की स्थापना में भाषा की भूमिका निस्संदेह सर्वोपरि है। भाषा किसी भी समाज के सदस्यों के सामाजीकरण की प्रक्रिया एवं एकीकरण का मुख्य आधार है।

© NCERT not to be republished

किसी समाज को सतत रूप से सुगठित एवं संचालित रहने के लिए ज़रूरी है कि उस समाज के लोग भावनात्मक रूप से नियंत्रित रहें। भावनात्मक रूप से नियंत्रित होने के लिए यह भी ज़रूरी है कि समाज के लोगों को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए उचित अवसर एवं उचित माध्यम मिलें और वह माध्यम भाषा है जिसके द्वारा यह अभिव्यक्ति संभव होती है। भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति का साधन भर ही नहीं है, वरन् यह स्वयं में एक कथ्य भी होती है, जिसमें किसी समाज का परंपरागत ज्ञान, कौशल, चेतना एवं मूल्य भी निर्मित होते हैं तथा संरक्षित होते हैं और पीढ़ियों से उपार्जित ज्ञान, कौशल, चेतना एवं मूल्य एक विशेष संस्कृति का निर्माण करते हैं। जिसे सतत रूप से भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित किया जाता है। इस प्रकार भाषा किसी समाज, संस्कृति की निरंतरता एवं परिवर्तनशीलता, दोनों को सहज बनाती है। किसी विशेष समाज में सांस्कृतिक अस्मिता सामूहिक जीवन को एक अर्थ प्रदान करती है, अस्मिता देती है। यह अस्मिता सक्रिय रूप से उस समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों एवं आचरणों में अभिव्यक्त होती है। ये सांस्कृतिक प्रतिमान संस्कृति के अभिलक्षण होते हैं, जिनके बारे में क्यूलेव (1986) ने कहा है, "आत्मिक संस्कृति अपने में किसी भी मानव समष्टि की सामूहिक स्मृति में अस्तित्वमान उस सूचना को द्योतित करती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी और प्रदर्शन द्वारा प्रेषित होती है और आचरण के कुछ रूपों में निर्धारित होती है।"

किसी समाज विशेष के लोगों की अपने स्थान एवं विशिष्ट सांस्कृतिक स्थिति के प्रति विशेष सजगता होती है। यह सजगता समाज के लोगों में अपनी अस्मिता के प्रति चेतना उत्पन्न करती है। इस चेतना को किसी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलती है। थ्योंगे (1994) ने कहा है, "जन समुदाय की अस्मिता और मानव समुदाय का सदस्य होने का विशिष्ट बोध का आधार ये मूल्य ही हैं और इन सारे मूल्यों के वाहक का काम भाषा करती है।"

इस प्रकार से भाषा मानव समुदाय में विशिष्टता का बोध पैदा करने के साथ-साथ समुदाय के सांस्कृतिक चरित्र का भी प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। किसी समाज की संस्कृति का एक बहुत बड़ा हिस्सा वह होता है जो समुदाय के सोचने-विचारने एवं चिंतन प्रक्रिया से संबंधित होता है। ऐसा इसलिए भी होता है कि वह समाज अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों के बारे में सदैव सजग रहता है तथा अपने अनुभवों के आलोक में जाँचता-परखता है। इस प्रकार भाषा किसी समाज के मन-मस्तिष्क में चल रही चिंतन प्रक्रिया को बाह्य संसार में प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है।

संस्कृति

ब्रिटिश मानवशास्त्री टेलर (1871) ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "संस्कृति वह जटिल इकाई है जिसमें ज्ञान, निश्चय, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज तथा मनुष्य द्वारा समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित बहुत-सी योग्यताएँ तथा आदते हैं।"

'संस्कृति ' शब्द का सामासिक अर्थ है— सम+कृति, जिसका आशय है कि किसी समाज के सोचने -विचारने, व्यवहार करने, बरतने, जीवन पद्धति में समरसता और संतुलन हो, ऐसा कार्य। यह संतुलन पीढ़ी दर पीढ़ी अनुभवों, अवलोकनों, परीक्षणों एवं विमर्श के बाद निर्मित होता है। किसी भी समाज का आधार रूप एक भाषा होती है,

© NCERT not to be republished

जिसके माध्यम से उस समाज विशेष की संस्कृति को जाना-समझा जा सकता है।'' संस्कृति ऐसी अदृश्य शक्ति है, जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किंतु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण है।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा अदृश्य शक्ति होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है, जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंध।... संस्कृति ऐसी चीज़ नहीं कि जिसकी रचना दस-बीस या सौ-पचास वर्षों में की जा सकती है। अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस तरह खाते-पीते, रहते-सहते, पढ़ते-लिखते, सोचते-समझते और राज-काज चलाते अथवा धर्म-कर्म करते हैं, उन सभी कार्यों से संस्कृति उत्पन्न होती है; यहाँ तक कि हमारे उठने-बैठने, पहनने-ओढ़ने, घूमने-फिरने और रोने-हँसने में भी हमारी संस्कृति की पहचान होती है, यद्यपि हमारा कोई भी एक काम संस्कृति का पर्याय नहीं बन सकता। असल में संस्कृति ज़िंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।'' (दिनकर, 1956)

मनुष्य अपने अनुभवों को अपनी अनुवर्ती पीढ़ियों को सौपता है। ये आनुभविक मूल्य क्रमिक रूप से संचयित होते हैं और समय के साथ स्वयंसिद्ध होकर सत्य का रूप लेते रहते हैं। कालांतर में धीरे-धीरे जीवन पद्धति बन जाते हैं और यह जीवन पद्धति अन्य समुदाय से किसी न किसी रूप में भिन्न होती है। इस तरह से किसी समाज की संस्कृति का निर्माण होता है।

समाज एवं भाषा

भाषा विज्ञानियों एवं समाजशास्त्रियों में एक अंतहीन बहस चलती रही है कि पहले भाषा अस्तित्व में आई या फिर समाज। इस बहस में न पड़ते हुए, इस बारे में कहा जा सकता है कि इतना निश्चित है कि मानव समूह के सुव्यवस्थित समाज के रूप में अस्तित्व में आने से पहले भी, आपसी संप्रेषण के लिए कोई माध्यम ज़रूर रहा होगा, बशर्ते कि वह आज की किसी भाषा की तरह परिष्कृत रूप में मौजूद न रहा हो। इसी प्रकार अपने विचारों एवं भावनाओं को भाषा के माध्यम से एक-दूसरे तक पहुँचाने की ज़रूरत ही तब पड़ी होगी जब मानव समूह सुव्यवस्थित समाज के रूप में संगठित होने लगे, इससे पहले तो ध्वनि/ध्वनियों या संकेतों से ही काम चलता होगा। इस प्रकार भाषा एवं समाज का एक-दूसरे से उनकी उत्पत्ति से ही संबंध रहा है। प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वनि, प्रकृति एवं भाव प्रकृति होती है और इस प्रकार से अलग-अलग समाजों की विशेष भाषिक पहचान होती है।

समाज एवं संस्कृति

प्रत्येक समाज को लोगों के कार्य-व्यवहार, सोचने व समझने के तौर-तरीके, विश्वास, रीति-रिवाज आदि को जीवन व्यवहार के नियमों में सूत्रबद्ध करने की ज़रूरत होती है। इससे समाज की संस्कृति निर्मित, संरक्षित एवं परिष्कृत होती है। किसी सुव्यवस्थित समाज की स्थापना के साथ-साथ उस समाज विशेष की सांस्कृतिक विकास यात्रा भी शुरू हो जाती है, परंतु इसमें अधिक समय लगता है, यह एक स्वीकृत तथ्य है। एक बार जब कोई समाज किसी विशेष संस्कृति में रच-बस जाता है तो इस परिपक्वता के

© NCERT not to be republished

बाद इसके मूलतत्वों में बदलाव करना बहुत आसान नहीं होता है अर्थात् समाज के तौर-तरीकों में फौरी बदलाव के साथ उस समाज विशेष की संस्कृति में त्वरित बदलाव नहीं आता है, इसमें समय लगता है और कई बार बहुत लंबा समय लगता है। वस्तुतः संस्कृति किसी समाज में गहन रूप में मौजूद रहती है। यह किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित नहीं होती है। समाज में निरंतर बदलावों के बावजूद संस्कृति का मूल तत्व शाश्वत बना रहता है। उदाहरण के लिए, भारत के कतिपय समाजों में निरंतर बदलावों के बावजूद संस्कृति में कर्म की प्रधानता, संघर्ष, निरंतर बेहतर रचना/सृजन, जिजीविषा, सर्व-धर्म सम्भाव, प्रकृति से तादात्म्य आदि मूलभूत तत्व विद्यमान हैं। किसी समाज और उसकी संस्कृति के अंतर्निहित संबंध की जाँच-पड़ताल की जाए तो इनका साथ चोली-दामन की तरह होता है। इनका एक-दूसरे के बिना संपूर्ण होना संभव नहीं है। कोई मनुष्य समाज के बिना नहीं रह सकता।

किसी व्यक्ति को समाज सदस्य के रूप में पूर्णतः तभी स्वीकार किया जाता है, जब वह उस समाज विशेष के सांस्कृतिक नियमों का पालन करता है, प्रतिबद्धता अभिव्यक्त करता है। व्यक्ति का अधिकतर समय समाज में ही गुज़रता है। इसके साथ ही, यह भी सत्य है कि सांस्कृतिक बदलाव किसी समाज के तौर-तरीकों में भी बदलाव लाता है। वह समाज में रहते हुए समाज में घटित घटनाओं के माध्यम से नवीन अनुभव प्राप्त करता रहता है और सीखता रहता है। समाज के सांस्कृतिक नियमों एवं परंपराओं का पालन करता है, इस प्रकार समाज विशेष की संस्कृति को ग्रहण करता जाता है। इसी क्रम में समाज से अंतःक्रिया करने के लिए एक भाषा भी इस्तेमाल करता है और यह भाषा वस्तुतः समाज द्वारा स्वीकार्य भाषा होती है।

भाषा एवं संस्कृति का अंत:गुंथन

भाषा किस स्तर पर संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है, यह उस समाज की आंतरिक सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करता है। इसमें विद्वान, अकादमिक, संस्कृतिकर्मी, कला-मर्मज्ञ, व्यापारी, पूंजीपति, मज़दूर, किसान, ग्रामीण, फ़िल्म जगत, मीडिया, शहरी, ग्रामीण आदि सभी शामिल हैं। ये सभी भाषा को परिमार्जित एवं परिष्कृत करते हैं और अपनी ज़रूरत एवं संदर्भों के अनुसार भाषा में नए-नए आयाम जोड़ते हैं। संस्कृति मनुष्य के विचारों एवं व्यवहारों के प्रतिमानों को इंगित करती है। इसके अंतर्गत मूल्य, विश्वास, आचार-संहिता, राजनीतिक प्रतिमान और आर्थिक व्यवहार सभी समाहित होते हैं। इन सभी को अभिव्यक्त करने के लिए किसी भी समाज को एक भाषा की ज़रूरत होती है।

समाज का संगठन एवं उसकी नींव समाज द्वारा स्वीकृत कुछ मूल्यों पर निर्भर करती है। मूल्यों की संरचना एवं अभिव्यक्ति समाज द्वारा अपनाई गई भाषा के माध्यम से होती है। मानव समाज इन मूल्यों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है और इन मूल्यों को जीवन में जीने का प्रयास करता है। इस प्रकार किसी समाज द्वारा अपनी भाषा में, उस समाज विशेष की संस्कृति को प्रस्तुत करने का प्रयास करता रहता है।

किसी भाषा के शब्दों में निहित प्रतीकात्मकता संप्रेषण का आधार बनती है। भाषा की निर्मिति का रहस्य व्यक्ति द्वारा उच्चारित रूपों की परंपरागत अभिव्यक्ति तथा समाज के अन्य सदस्यों द्वारा उसी परंपरागत अर्थ में ग्रहण करने की स्वीकृति में निहित होता है। संभवतः इसीलिए भाषा को अर्जित करना होता है, यह अर्जन एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य है।

© NCERT not to be republished

भाषा एवं संस्कृति के मध्य गहरा संबंध होता है। मोटे तौर पर भाषा को संस्कृति की मौखिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। सांस्कृतिक प्रतिमानों को अभिव्यक्त करने एवं संप्रेषित करने के लिए एक भाषा की ज़रूरत होती है, वरन् समाज किन मूल्यों पर विश्वास करता है? किस प्रकार सोचता-विचारता है? को अभिव्यक्त करने की प्रतीकात्मक प्रणाली भी है।

अंत:गुंथन के निहितार्थ

किसी समाज की भाषा एवं संस्कृति का आपसी अंत:गुंथन किस प्रकार का है? उस समाज विशेष में इसके गंभीर शैक्षिक निहितार्थ हैं। समाज को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में संगठित करने में भाषा की एक अहम भूमिका होती है। हम ऐसे समाज को एक परिपूर्ण समाज एवं सुगठित समाज कह सकते हैं, जिसके जीवन व्यवहार के सुपरिभाषित नियम हों, जिसकी एक सुस्पष्ट संस्कृति हो और इन्हें अभिव्यक्त करने के लिए मान्य एवं स्वीकार्य भाषा हो। किसी समाज में भाषा एवं संस्कृति का अंत:गुंथन के निम्नांकित निहितार्थ हो सकते हैं —

- भाषा के माध्यम से किसी समाज विशेष के लिए उपयुक्त ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों को ग्रहण करने की प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है। भाषा किसी समाज में सभी व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार से कार्य करने, बरतने एवं व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है और इस प्रकार से उस समाज विशेष की चेतना को अभिव्यक्त करती है। यह कार्य-व्यवहार, बरतना एवं चेतना मिलकर उस समाज की विशिष्ट संस्कृति की निर्मिति करते हैं और उस समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही हो सकती है।
- भाषा एक प्रकार से संस्कृति का एक सॉफ़्टवेयर है। यदि किसी समाज की संस्कृति को समझना है तो इस सॉफ़्टवेयर के इस्तेमाल के बिना यह बहुत दुरूह हो जाएगा। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति से मिलने पर राम-राम कहना, प्रणाम करना या फिर गुड मॉर्निंग कहना आदि व्यक्ति को सामाजिक समष्टि से जोड़ने वाली संस्कृति की भाषिक अभिव्यक्तियाँ हैं। ये अभिव्यक्तियाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की पहचान को दर्शाती हैं।
- संस्कृति समाज की अनुभवमूलक उपलब्धि है। किसी समाज की संस्कृति के तत्वों का उस समाज की शिक्षा के स्वरूप पर गहरा असर पड़ता है। संस्कृति, समाज की पीढ़ियों से परिष्कृत-विकसित जीवन शैली है, शिक्षा उसे परिमार्जित करने में अहम भूमिका निभाती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कोई बच्चा वयस्क होता हुआ समाज के सामूहिक जीवन एवं संस्कृति में प्रवेश करता है। जब किसी व्यक्ति, व्यक्ति समूह या समाज का मूल्यांकन किया जाता है तो उसकी शिक्षा, भाषा एवं सांस्कृतिक मूल्यों के आलोक में ही यह मूल्यांकन किया जाता है।
- बच्चे अपने समाज की संस्कृति को ग्रहण करते हुए बड़े होते हैं, भाषा एवं संस्कृति, बच्चों के सीखने के तरीकों एवं स्वभाव को निर्धारित करते हैं, बहुत हद तक यह इसी बात से निर्धारित होता है कि बच्चा क्या सीखेगा? और किन बातों को सीखना उसके लिए आसान होगा?

© NCERT not to be republished

किन बातों को सीखने में उसे दुविधा होगी? और कहाँ शिक्षक को संवेदनशील प्रयास करने की ज़रूरत पड़ेगी। इसके लिए सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी शिक्षक की होती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी समाज की संस्कृति अति रूढ़िवादी हो और कतिपय अंधविश्वासों को मानती है तो ऐसा समाज शिक्षा के द्वारा सिखाए गए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आसानी से स्वीकार नहीं करेगा। अतः ऐसी स्थिति में एक शिक्षक को गंभीर प्रयास करने होंगे।

- संस्कृति एवं शिक्षा के अंत:संबंध में भाषा की केंद्रीय भूमिका है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि यदि बच्चे को शुरुआती वर्षों में उसकी मातृभाषा (यह निश्चित ही उसके सांस्कृतिक परिवेश की भाषा होगी) में पढ़ने के अवसर दिए जाएँ और इसी भाषा में मार्गदर्शन किया जाए तो अपनी रुचि के चुने हुए विषयों में बच्चा बेहतर प्रदर्शन करने में सफल होगा। इसके विपरीत बच्चे को अपनी मातृभाषा में यह अवसर न देकर अन्य भाषा (वर्तमान संदर्भों में आंग्ल भाषा) में पढ़ने-लिखने का उपक्रम किया जाए तो बच्चे की ऊर्जा विषय को सीखने के बजाय, इस नई भाषा को सीखने-समझने में लग जाएगी। सोचना-विचारना, समझना मुख्यतः किसी सांस्कृतिक संदर्भ में ही होता है और उसी भाषा में होता है जो बच्चे के सांस्कृतिक परिवेश की हो।
- शिक्षा, व्यक्ति की मूलभूत क्षमताओं को उच्चतम स्तर तक विकसित करने के लिए अवसर उपलब्ध करने का औपचारिक उपक्रम है, जिससे वह समाज का ज़िम्मेदार एवं उपयोगी नागरिक बन सके। इस भूमिका निर्वहन के लिए व्यक्ति का समाजीकरण ज़रूरी होता है। अनौपचारिक तौर पर यह परिवार एवं समाज में जारी रहता है, जिसमें व्यक्ति सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालने का प्रयास करता है, सामाजिक मानकों तथा सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करता है। औपचारिक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी में नागरिकोचित व्यवहार हेतु आवश्यक ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों का बीजारोपण किया जाता है। इस क्रम में शिक्षा उपयोगी सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देती है और ज़रूरत पड़ने पर इनका परिमार्जन भी करती है।
- प्रत्येक समाज की संस्कृति उस समाज की भाषा को गढ़ने का काम भी करती है। आर्कटिक प्रदेशों में हिम या बर्फ़ के लिए 100 से अधिक शब्द व्यवहार में लाए जाते हैं। इसी प्रकार कृषि प्रधान समाज, औद्योगिक समाज, व्यापारिक समाज, कला एवं मनोरंजन कार्य में रत समाज आवश्यकतानुसार शब्द गढ़ते हैं, भाषा रचते हैं। अलग-अलग समाजों की संस्कृतियाँ अपनी परिवेशीय आवश्यकताओं के अनुरूप शब्द गढ़ती हैं और एक विशेष भाषा को अपनाती हैं। शिक्षा उपक्रम में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। शिक्षा में बच्चे के द्वारा ज्ञान निर्माण में इसकी विशेष भूमिका होती है।
- संरचनावाद की सामाजिक संरचनावाद शाखा के समर्थक विद्यार्थी, भाषाई एवं सांस्कृतिक संदर्भों पर बहुत ज़ोर देते हैं। इनका मानना है कि विद्यार्थी अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों

© NCERT not to be republished

में ज्ञान की रचना बेहतर ढंग से कर सकते हैं और ऐसा ज्ञान विद्यार्थी के लिए अर्थपूर्ण भी होता है। जिस भाषा का प्रयोग विद्यार्थी अभी तक करता आया है, उसी भाषा में सीखना विद्यार्थी के लिए सहज होता है। सीखने या ज्ञान निर्माण के क्रम में, अपनी संस्कृति के संदर्भ में जाँच-पड़ताल करते हुए, विद्यार्थी ज्ञान की रचना करता है। कोई ऐसी भाषा जो विद्यार्थी के तात्कालिक परिवेश से नहीं जुड़ी है, विद्यार्थी के ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को बाधित करती है।

- हमारे देश में, भाषा के व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा लगभग 87 भाषाएँ व्यवहार में लाई जाती हैं (आर. पार्थसारथी, 1989), प्रशासनिक स्तर पर 13 भाषाओं में काम होता है, विद्यालयों में बच्चे लगभग 47 भाषाएँ लेकर आते हैं, (जे. डी. गुप्ता, 1970)। यह हमारे देश की भाषाई विविधता को प्रदर्शित करती है, परंतु यह भी एक वास्तविकता है कि किसी एक भाषा के प्रति आग्रह के कारण भाषाई विविधता के महत्वपूर्ण संसाधन की निरंतर उपेक्षा होती है। विद्यालयों में तो यह उपेक्षा अपने चरम पर रहती है। किसी भी विद्यालय, संस्थान या प्रशासनिक अभिकरण में यह व्यवहार व्यक्ति में अपनी भाषा के प्रति हीनताबोध पैदा करता है और यह हीनताबोध अपनी संस्कृति तक पहुँचता है। वस्तुतः कोई भी संस्कृति अपने समकालीन रूप में बेहतर ही होती है।
- किसी समाज की अपनी भाषा को समृद्ध करने के बजाय उस भाषा के प्रति आग्रह बढ़ रहा है जो किसी पद या सत्ता प्राप्त करने में सहायक मानी जाती है। समाज में किसी ऐसी भाषा का आग्रह, जिसको सत्ता, प्रभुत्व एवं संसाधनों तक पहुँच के आधार पर स्थानिक भाषा के ऊपर तरजीह दी जाती है, समाज में भाषिक क्षमता के आधार पर उसका स्तरीकरण होता है। यह स्तरीकरण स्थानीय भाषा, विद्यालयी भाषा एवं आग्रह की भाषा (भारतीय संदर्भों में आंग्ल भाषा) के आधार पर होता है। इसका असर विद्यालयों तक पहुँचता है। भारत में किसी भाषा विशेष के प्रति बढ़ते आग्रह के कारण आंग्ल भाषा में शिक्षा का दावा करने वाले विद्यालयों के बहुत सारे स्तर मौजूद हैं। ये विद्यालय समाज के मनोविज्ञान का हित दोहन अपने पक्ष में बखूबी करते हैं। भाषा को समाज में प्रगति का आधार मानने का यह मनोविज्ञान भाषाई आधार पर भेदभाव की संरचना करता है। भाषा किसी भी संस्कृति की अनुगामिनी, सहगामिनी होनी चाहिए, परंतु जब भाषा अग्रगामी भूमिका में आ जाती है तो एक अलग किस्म के सामाजिक भेदभाव की संरचना करती है और भाषा की सत्ता स्थापित होने लगती है।
- एक ऐसी भाषा जो उस समाज के सांस्कृतिक परिवेश का प्रतिनिधित्व नहीं करती है, किसी भी समाज में संस्कृति का निर्धारक बनने लगती है तो उस समाज की संस्कृति में एक विशेष प्रकार का विद्रूपीकरण पैदा करती है। किसी परंपरागत समाज (ऐथनिक सोसाइटी) में विभिन्न उत्सवों, समारोहों एवं आयोजनों में इसे साफ़-साफ़ महसूस कर सकते हैं। भारतीय

© NCERT not to be republished

संदर्भों में अवलोकन करने पर हम महसूस कर सकते हैं कि हम आंग्ल भाषा के प्रति विशेष आग्रह के कारण आंग्ल भाषी समाज के अनुरूप रहन-सहन, तौर-तरीके अपनाने की कोशिश में, संस्कृति के मूल तत्वों से छेड़-छाड़ का प्रयास करते हैं, परंपरागत संस्कृति को पिछड़ेपन का प्रतीक मानने लगते हैं तथा आंग्ल भाषा व्यवहार को आधुनिकता मानते हैं। इससे किसी विशेष संस्कृति के प्रति हीनताबोध पैदा किया जाता है। यह किसी भी समाज की संस्कृति के लिए बहुत घातक है। किसी भी समाज की भाषा समूचे समाज की सामूहिक संपत्ति होती है, जिसका सृजन किसी एक समूह के नियंत्रण में नहीं होता। भाषा बहते पानी की तरह है, जिस पर समाज के सभी व्यक्तियों का समान अधिकार है, परंतु इसके प्रवाह को नियंत्रित एवं प्रभावित करने का अधिकार किसी व्यक्ति/समूह को नहीं दिया जा सकता है।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि कोई भी समाज संस्कृति को अपने जीवन में जीता है और भाषा को अपने व्यवहार में बरतता है। भाषा किसी समाज की संस्कृति को संरक्षित करने, आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण साधन है। भाषा एक साधन है, संस्कृति एक साध्य है। किसी भी समाज की समरसता के लिए आवश्यक है कि समाज के सदस्यों में तादात्म्य हो, विविधता का सम्मान हो, आपसी सम्मान हो, किसी भी आधार पर कोई भेदभाव न हो, भाषाई विभेद न हो, संस्कृति के मूल तत्वों की व्यापक समझ हो और इनकी जाँच-पड़ताल का साहस हो। वस्तुतः किसी भी संस्कृति के मूल में यह तत्व गहराई से मौजूद भी रहते हैं। भाषा इसे उद्घाटित करके समरस समाज की भाव-भूमि निर्मित कर सकती है।

समाज, भाषा एवं संस्कृति में अत्यंत गहरा संबंध है। समाज के संघर्ष, सुख-दुःख, पीड़ा, मूल्य, उत्साह, अवसाद को उसकी संस्कृति में महसूस किया जा सकता है और भाषा इन्हें शब्द देती है। संस्कृति की आइसबर्ग अवधारणा के अनुसार, 'जिस तरह पानी में तैरते हुए आइसबर्ग के पानी की सतह से दिखाई देने वाले ऊपरी हिस्से की तुलना में पानी में डूबा हुआ हिस्सा बड़ा होता है, जो कि नज़र नहीं आता है।' उसी प्रकार ऊपरी तौर पर किसी भी संस्कृति के जो हिस्से नज़र आते हैं, वे खान-पान, पहनावा, आचार-व्यवहार हैं, लेकिन संस्कृति के जो अहम हिस्से नज़र नहीं आते हैं, वे मूल्य, परम्पराएँ, विश्वास, मान्यताएँ आदि हैं। इन्हें जानने-समझने के लिए उस समाज से अंतःक्रिया करके समझने की ज़रूरत होती है, इसके लिए भाषा माध्यम बनती है और यह उस समाज की अपनी विशेष भाषा होती है।

भाषा किसी समाज विशेष की संस्कृति को समझने में खिड़की की तरह होती है जो सामाजिक संवाद में अहम भूमिका निभाती है। इसका एक सरलीकृत उदाहरण लिया जा सकता है, जैसे— हमारे समाज में किसी को संबोधित करते समय औपचारिकता बरती जाती है तो अधिकतर 'आप' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है, जबकि अनौपचारिक संबोधन में 'तुम' और कई बार तो 'तू' का भी इस्तेमाल साधारण बात है। इस अनौपचारिक संबोधन में किसी व्यक्ति की गरिमा का अपमान

© NCERT not to be republished

न होकर बहुधा स्नेहतिरेक या प्रेमातिरेक भी हो सकता है। इसका ठीक-ठीक अंदाज़ा प्रतीकात्मक भाषिक व्यवहार से ही हो सकता है। मानव समाज के जीवनयापन के तौर-तरीके संस्कृति का एक अहम हिस्सा हैं, वहीं इनकी अभिव्यक्ति के लिए किसी माध्यम की ज़रूरत होती है और इस ज़रूरत को भाषा पूरा करती है। समाज और उसकी संस्कृति से सामंजस्य बिठाने के लिए मानवीय आवश्यकता की खोज भाषा है। संस्कृति में बदलाव होने पर भी बदलाव आता रहता है, वहीं भाषाई व्यवहार में बदलाव होने पर कुछ हद तक संस्कृति भी स्वयं को समायोजित करती रहती है। परिवार में किसी बच्चे को जन्मदिन की शुभकामनाओं की अभिव्यक्ति में, भाषा में 'हैप्पी बर्थडे' जुड़ता है तो साथ-साथ 'बर्थडे केक' और इससे संबंधित सभी प्रक्रियाएँ भी पीछे-पीछे आ जाती हैं। इसी प्रकार, कुछ नए तौर-तरीके जुड़ते हैं तो इनके लिए ज़रूरी शब्द या शब्दावलियाँ भी भाषा में जुड़ती जाती हैं। इस प्रकार से किसी समाज की भाषा और संस्कृति का आपस में अंतर्गुंथन चलता रहता है।

संदर्भ

आर. पार्थसारथी. 1989. *जर्नलिज़्म इन इंडिया —फ्रॉम द अर्लिएस्ट टाइम्स टु प्रज़ेंट* डे. स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.

क्यूलेव, बोरिस. 1986. *स्वतंत्र भारत में जातीय एवं भाषाई समस्या*. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मास्को.

गुप्ता, जे. डी. 1970. *लैंग्वेज कनफ्लिक्ट एंड नेशनल डेवलपमेंट-ग्रुप पोलिटिक्स एंड नेशनल लैंग्वेज पॉलिसी इन इंडिया*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले, लॉस एंजिलिस एंड लंदन.

टेलर, ई. वी. 1871. डेफ़िनेशन ऑफ़ कल्चर. *विकिमिडिया कॉमन्स*. फ्रोम पॉपुलर साइंस.

थ्योंगे, न्गुगी वा. 1994. *भाषा संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता*. सारांश प्रकाशन, नयी दिल्ली.

दिनकर, रामधारी सिंह. 1956. *संस्कृति के चार अध्याय*. राजपाल एंड संस, दिल्ली.

ब्लॉक, बी., बी और जी. एल. ट्रेगर. 1942. *आउटलाइन ऑफ़ लिन्गुइस्टिक एनालिसिस*. लिन्गुइस्टिक सोसाइटी ऑफ़ अमेरिका, बाल्टीमोर. ए लैंग्वेज इज़ ए सिस्टम ऑफ़ आबिट्रारि वोकल सिंबल्स बाइ मीन्स ऑफ़ विच ए सोशल ग्रुप को-ओपरेट्स. 4 फ़रवरी, 2018 को https://www.britannica.com/biography/Bernard-Bloch & https://www.courses.psu.edu/spcom/spcom210_nxj6/language.html से लिया गया है.

वान्द्रियेज, जे. 1986. *भाषा*. अनुवादक जगवंत किशोर बलवीर. हिंदी समिति सूचना विभाग, लखनऊ.

© NCERT not to be republished